अंक : 16

फरवरी, 2025

वीथिका पत्रिका

साहित्य, कला, संस्कृति , विज्ञान

DOI: 10.528/Zenodo.11063568

लोक चिति

दिव्य कुम्भ भव्य कुम्भ महा कुम्भ

WWW.VITHIKA.ORG

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
प्रो. प्रभाकर सिंह
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

प्रकाशक
उज्जवल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

कवर फोटो उत्तर प्रदेश सरकार के आधिकारिक महाकुम्भ X हैंडल से ली गयी है

संपादकीय समिति

डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख लेखक के अपने विचार हैं

वीथिका ई पत्रिका

फरवरी, 2025

अंक: 16

विषय सूची :

गलियों की बात 04

साक्षात्कार : प्रो. शर्वेश पाण्डेय 05
लोक की चिति ही राष्ट्र की आत्मा है

महाकुम्भ : प्रो. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव 11

चलो मन गंगा यमुना तीर : 14
डॉ. धनञ्जय शर्मा

चित भूमियाँ : विवेक मिश्रा 32

लघुकथा : डॉ. मुशीर अहमद 33

कृतिका के कार्टून : कृतिका सिंह 34

परिचय दास जी की कवितायेँ 16

पुस्तक समीक्षा : डॉ. विकास दवे 20
दिल के कागज़ पर आंसुओं की स्याही

काव्य वीथी : 22
नमिता राकेश, मनोज सिंह, रोमिता शर्मा, डॉ.धनंजय शर्मा, बृजेश गिरि, सूरज द्विवेदी'भगीरथ', जितेन्द्र मिश्र काका, धारिणी धरित्री, अनीता रोहलन, अविनाश पाण्डेय, अनिल पाण्डेय, मुकेश मोदी

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current issue to your tablet

वीथिका ई पत्रिका

गलियों की बात

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

महाकुम्भ के महापर्व पर वीथिका ई पत्रिका आप सभी सुधीजनों हार्दिक स्वागत करती है। दन्त कथाओं के अनुसार इसकी शुरुआत समुद्र मन्थन के पश्चात तथा कुछ ग्रन्थ सतयुग में कुम्भ मेले की शुरुआत मानते हैं। कुल मिलाकर देखें तो महाकुम्भ में प्रकृति एवम जीव तत्वों का अद्भुत समायोजन एवम सामंजस्य मिलता है। इस अद्भुत संगम महाकुम्भ में ब्रह्माण्ड की शक्तियों के साथ यह शरीर रुपी पिण्ड कैसे सामंजस्य स्थापित करें इन रहस्यों की हमें अनुभूति मिलती है। महाकुम्भ में नागा साधुओं की विभिन्न झाकियां जीवन के प्रति अलग ही दृष्टिकोण,साधना का अलग ही दृश्य प्रस्तुत करती हैं । और इन सबसे सुन्दर भोली-भाली जनमानस जिनकी एकमात्र इच्छा देह से विरत होने से पूर्व या जीते-जी एक बार महाकुम्भ में स्नान कर भवसागर से तर जाने की कामना इन्हें कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वहां तक पहुंचने की प्रेरणा देती है। इस महाकुम्भ को विभिन्न मत-मतान्तर, अभिमतों का मंथन भी कह सकते हैं।

वीथिका ई पत्रिका ने भी साहित्यिक महाकुम्भ में डूबकी लगाकर विशिष्ट विद्वतजन जैसे प्राचार्य, डी. सी. एस. के. महाविद्यालय, मऊ डॉ. शर्वेश पान्डेय जी द्वारा पत्रिका से लोक चिति पर विस्तार से चर्चा तथा महाकुम्भ पर विद्वान साहित्यकार परिचय दास जी का लेख आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। अन्य सफल विभूतियों ने भी अपनी रचना से वीथिका को सजाया है। प्रस्तुत है आपके समक्ष आपकी वीथिका ई पत्रिका का फरवरी, 2025 अंक

“लोक चिति” ।

लोक की चिति ही राष्ट्र की आत्मा है : प्रसिद्ध भाषाविद प्रो. शर्वेश पाण्डेय

वीथिका ई पत्रिका पहुंची प्रसिद्ध भाषाविद, चिंतक, वरिष्ठ साहित्यकार आदरणीय प्रो . शर्वेश पाण्डेय जी, प्राचार्य, डी.सी.एस.के. महाविद्यालय,मऊ से मिलने व उनसे लोक साहित्य व राष्ट्र के बारे कुछ सीखने। हमारे भाषा व संस्कृति सम्पादक श्री बृजेश गिरि जी ने जब उनसे चर्चा की तो पता चला कि श्री शर्वेश पाण्डेय जी मऊ में ही लोक कलाओं व भोजपुरी पर अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य संगम का भव्य आयोजन आगामी 27-28 फरवरी को करने वाले हैं।

बृजेश जी- सर भारतीय ज्ञान परम्परा के बारे में हमें कुछ बताईये ?

शर्वेश पाण्डेय जी - देखिये जब आप भारतीय ज्ञान परम्परा के बारे में बात करते हैं तो उसके कुछ आधार हैं, किसी भी परम्परा को प्रवाह मिले तो उसकी एक संरचना होती है जिसके आधार पर वह चलती है, अगर वह संरचना दिख रही है उसमें तो उसे उस परम्परा का हिस्सा माना जाता है, अगर वह उस संरचना के बाहर है तो वह परंपरा नहीं रहती है । जब हम भारतीय ज्ञान परम्परा की बात करते हैं तो भारतीय चिन्तन जिसे दीनदयाल जी चिति के नाम से कहते हैं, जो चेतना है उसे ही हम आधार भूमि कहते हैं, उसी से यह निश्चय होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा का

मतलब क्या होता है ?

मैं भारतीय ज्ञान परम्परा के कुछ संरचनात्मक अवयवों के बारे में बात करूँगा जिसे कह सकते हैं कि ये उसकी मुलभुत ईकाई है, जैसे उसके चिन्तन का जो सबसे महत्वपूर्ण पहलु होता है कि वो भाव को महत्व देता है, स्थूल को नहीं । भाव सूक्ष्म को महत्व देता है, उसके लिए स्थूल भौतिकता के मायने नहीं हैं । उस स्थूल भौतिकता की संरचना को खड़ा करने वाली जो उसकी संरचना है, जो उसके अंदर के भाव हैं वह उसके लिए महत्वपूर्ण है । दूसरी एक बहुत महत्वपूर्ण बात है कि अगर मुझसे यह पूछा जाये कि भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल तत्व क्या है, मूल संरचना क्या है,किस आधार पर हम तय करेंगे कि भारतीय ज्ञान परम्परा क्या है तो मैं यही कहूँगा कि वह उसका सूक्ष्म रूप है जिसे भाव रूप पर हम समझते रहे हैं । उसका थोड़ा सा भी विस्तार यदि हम करते हैं तो गुण रूप में आता है । जैसे हमारे यहाँ जो स्थूल भौतिकता है उससे भारतीय ज्ञान परम्परा को या ज्ञान परम्परा को या ज्ञान को समझने की कोशिश नहीं करते हैं, हमारे यहाँ जो गुण है उसको महत्व देते हैं तो इसका जो अगला स्तर है वह जो सूक्ष्म रूप है, गुण है । उदाहरण के लिए पश्चिम स्थूल को महत्व देता है, वो भौतिकता को महत्व देता है, इसलिए वो मानता है कि भौतिक संरचनाएं खड़ी करना ही विकास है । हम सूक्ष्म को महत्व देते हैं इसलिए हम भौतिक संरचनाओं में विकास नहीं देखते, गुण में विकास देखते हैं ।

बृजेश जी - भारतीय ज्ञान परम्परा को संरक्षित करने में लोक साहित्य की क्या भूमिका है ?

शर्वेश पाण्डेय जी – देखिये जब लोक परम्परा की बात करते हैं, लोक व शास्त्र का एक अलग विषय है, लोक में विस्तार है, लोक में विविधता भी है । उस विस्तार से तत्वों को लेकर शास्त्र बनते हैं, एक प्रक्रिया है कि बहुत सारे विकल्पों में से एक का चयन कर उसकी स्वीकृति के आधार पर शास्त्र बनता है । लोक व शास्त्र का जो रिश्ता है इसी को परिभाषित करने के लिए परम्परा खड़ी होती है । शास्त्र में जो चीजें लोक के देश व काल के अनुरूप नहीं होतीं वो चीजें छुट जाती हैं और लोक के देश व काल की वो चीजें जो शास्त्र में नहीं हैं उनका प्रवेश होता है । यही छूटना व प्रवेश होना यही तो परम्परा है । लोक व शास्त्र का सम्बन्ध परम्परा के माध्यम से चलता है ।

लोक हमेशा शास्त्र को समृद्ध करता है ।लोक का मतलब क्या है, लोक का मतलब देश व काल के सापेक्ष चीजें रहती हैं । देश व काल में जैसे परिवर्तन होता है वैसे चीजें बदल जाती हैं। इसे बहुत सतही स्तर पर हम समझने की कोशिश करें तो आप भौगोलिक परिवर्तन से देखेंगे कि जैसा वातावरण रहता है वैसा उपज, वस्त्र, भोजन आदि बदल जाता है । इसीलिए लोक का आयाम विस्तृत है । तो लोक शास्त्र का संरक्षक होता है। लोक व शास्त्र में एक ही भेद कह सकते हैं कि शास्त्र लोक को जोड़ता है लेकिन लोक में शास्त्र का विस्तार होता है, लोक में स्थानीयता का विस्तार होता है । वैसे भी हमारी परम्परा समग्रतावादी दृष्टि रही है । हम खंड-खंड में देखने के अभ्यासी नहीं रहे हैं,हम समग्र रूप से चीजों को देखते हैं । इसीलिए ऋतुओं, देश व काल के परिवर्तन से शरीर भी तमाम तरह के परिवर्तन को ग्रहण करता है व कुछ को छोड़ता है । मैं कहता हूँ ये प्राकृतिक है, प्रकृति ही इस पूरे विज्ञान को स्वीकारती है जो समय, देश, काल के अनुरूप है उसे ग्रहण करना जो देश काल के अनुरूप नहीं है उसे कुछ समय के लिए छोड़ना ।

आप भारतीय ज्ञान परम्परा को यदि देखें तो पाणिनि पर एक विद्वान हैं ग्रूमफिल्ड, उन्होंने जब भाषा पर काम किया तो कहा कि पाणिनि मेधा के सर्वोच्च शिखर पर हैं, इनका व्याकरण बहुत सूक्ष्म पर्यवेक्षण पर आधारित है और उसमें जो नियम बनाये गये हैं वो व्यवहार के धरातल पर परीक्षणोपरांत बने हैं, यानि जो हम व्यवहार कर रहे हैं उससे पर्यवेक्षण करने के बाद वो चीजें आयी हैं । यानि पाणिनि के अष्टाध्यायी को बनाने में लोक की बड़ी भूमिका है । तो जो हमारा शास्त्र निर्माण होता है उसमें लोक बड़ी भूमिका अदा करता है ।

बृजेश जी – आप लोक में संस्कृति की चर्चा कर रहे थे, लोक में संस्कृति के विविध रूपों पर हमें कुछ बताईये ?

शर्वेश पाण्डेय जी - दरअसल क्या हुआ कि जब अंग्रेज़ आये तो उन्हें लगा कि भारत में शासन कैसे करें, तो उन्होंने दीर्घ काल तक शासन करने के लिए वहां के संसद में बहस हुई, उन्होंने कहा कि अगर हम यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को बदल दें, इसके वैचारिक अधिष्ठान जब तक नहीं बदलेंगे तब तक यहाँ शासन नहीं कर पाएंगे । इसी का परिणाम हुआ कि उन्होंने अध्ययन किये, उनका डॉक्यूमेंटेशन किया, ये कैसे हुआ जैसे हमारे यहाँ चार्वाक का एक सिद्धांत है, जिसने जैसा देखा वैसा ही उसको मान लिया, जबकि वैसा कोई भेद नहीं था । हमारे यहाँ गिलहरी प्रयास था, यह गिलहरी प्रयास भारत की परम्परा का शब्द है । हम लोगों के यहाँ लोक व शास्त्र का द्वंद्व नहीं रहा है।

बृजेश जी – हमारे क्षेत्र में बहुत सारी लोक परम्पराएं हैं, लोक कलाएं हैं, इस विषय में आपसे कुछ जानना चाहता हूँ ?

शर्वेश पाण्डेय जी – मैंने जैसा बताया कि ये जो एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है जो हमारी चेतना का हिस्सा है कि हम लोग समाज को सावयव ईकाई मानते हैं, जीवमान ईकाई मानते हैं । समाज कोई निर्जीव ईकाई नहीं है, उसमें जीवन होता है इसीलिए कमज़ोर लोगों का समूह भी जब खड़ा होता है वो भी ताकतवर होता है । सावयव ईकाई जब हम कहते हैं तो समाज का भी एक मस्तिष्क होता है, समझ होती है और उससे वो समाज संरचनाओं को गढ़ता है । ये जो लोक परम्पराएं हैं, लोक गीत हैं वो भी देश व काल के अनुसार वहां को जो समाज है वह अपने जीवन के अंश के रूप में इन लोक कलाओं का विकास करता है, अतः आप देखेंगे कि जैसा देश, काल होता है वैसा ही लोक गीत, लोक कलाएं, लोक नाटक होते हैं । अगर आप विदेशिया की बात करें तो भिखारी ठाकुर का जो समाज है, देश तो वही है, देश में क्या परिवर्तन हुआ कि विदेशी शासन आ गया, काल कैसे बदला जो क्षेत्र दुनिया में एक सन्देश देने वाला था, वह पाटलिपुत्र था, उसकी आर्थिक स्थिति अंग्रेजों के शासन काल में प्रभावित हुई तब वहां से पलायन शुरू होता है । तब वो जो परिवर्तन है उस लोक के काल का, उस देश का उसके कारण बिदेशिया नाटक उत्पन्न होता है । वो समाज अपने देश काल में हुए परिवर्तन के अनुसार लोक कलाओं का विकास करता है तो इस तरह से लोक कलाएं अलग-अलग आती हैं । लेकिन फिर मैं एक बात कहूँगा कि हम विविधता में एकता की बात करते हैं,वह है क्या कि एक चिति जो मूल चेतना है, उस समाज के सोचने का जो नजरिया है जैसा मैंने बताया आप कोई भी लोक कला उठा कर देखिये सबमें आपको आध्यात्मिकता का पुट मिलेगा । लोक कला का एक ही सन्देश है जो मौलिकता है वह नश्वर है,

जो भाव है, जो आध्यात्मिकता है, इसलिए हमारे यहाँ सबसे अधिक मोक्ष को महत्व दिया गया । मोक्ष तो भौतिकता में है ही नहीं, यह तो त्याग का विषय है । इसे ही कहा जाता है कि लोक कलाएं, लोक गीत ये संरचना है, ये समाज द्वारा विकसित हुई, इसके पहले विचार है, इसके पहले चेतना होती है । चिति होती है, चिति ये तय करती है कि किन चीजों को स्वीकार करना है, किन चीजों को अस्वीकार करना है । हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं, उसमें हमारे यहाँ मूल आधार धर्म है व चरम मोक्ष है । धर्म व मोक्ष से अनुशासित अर्थ व काम को महत्व दिया गया है । जब धर्म का अनुशासन अर्थ व काम से हटता है तो मोक्ष के मार्ग में स्खलन होता है, मोक्ष में बाधा उत्पन्न होती है । ये भारतीय ज्ञान परम्परा की मूल संरचना है । ये आपको सभी लोक कलाओं में देखने को मिलेंगी ।

बृजेश जी – सर राष्ट्रचेतना में लोकसाहित्य का क्या महत्व है?

शर्वेश पाण्डेय जी - जब राष्ट्रियता की बात हम लोग करते हैं तो राष्ट्र में कई चीजें आती हैं।जैसे जो भारत की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक चेतना का विषय है और उसमें जो भारतीय परंपरा का कहें जो हमारी चिति है उसको राष्ट्र की आत्मा के रुप में स्वीकार किया गया है । लेकिन पश्चिम का जो राष्ट्रवाद आया उसके कारण हमारे राष्ट्र को भी देखने की गलत परंपरा आ गयी । हम राष्ट्र को तात्कालिक राजसत्ता द्वारा शासित भौगोलिक क्षेत्र के रुप में देखने लगे, ऐसा है नहीं इसके कारण से भ्रम पैदा होता है। तो जब-जब भौगोलिक सीमाएं राष्ट्र को बांधने की कोशिश करती हैं तब-तब जो उसकी चिति है उसका प्रकटन साहित्य में होता है। कह सकते हैं जो मुख्य धारा का साहित्य है, राजसत्ता से टकराने की स्थिति में होता है, जिस पर राजसत्ता से सीधे संवाद होता है, उस साहित्य में उसका प्रकटन कई बार नहीं हो पाता है। मैं इसका उदाहरण दूंगा कि आप लोगों को अवसर मिले तो 1857 के मई के अखबार को देखिए। मैंने भारत मित्र अखबार पढ़ा है, जब दिल्ली गया था और त्रिमूर्ति भवन में लाईब्रेरी में जाकर देखा,मैं खोज रहा था कि 1857 की क्रान्ति का कहीं जिक्र मिल जाय,9-10-11 मई के पूरे अखबार में कहीं 1-2 पंक्ति तक की सूचना भी नहीं थी इतनी बड़ी क्रान्ति के बारे में। ऐसा क्यों हुआ क्योंकि जो अखबार निकल रहे थे उनका सीधा सत्ता से संवाद था । सत्ता का कई बार कह सकते हैं अंकुश था, तो अंकुश होने के कारण जो मुख्य धारा का साहित्य था उसमें उस चिति का प्रकटन नहीं होता है, लेकिन जो लोक है उस पर कोई नियन्त्रण नहीं है। इसलिए जो लोक साहित्य है उसमें उस चिति का बहुत ही सुन्दर प्रकटन होता है और ये प्रकटन 1857 के आसपास जितने भी लोकगीत हैं, आज भी बहुत सारे जगहों पर पुराने लोकगीत जो मिल जाएंगे उसमें बड़ी बेबाकी, गौरव के साथ उसका प्रकटन हुआ है। इसलीए मैं कहता हूं कि लोक ही राष्ट्र को खड़ा करता है,जो लोक की चिति है वही राष्ट्र की आत्मा है।

बृजेश जी - इस महीने के आखिरी में अखिल भारतीय लोक साहित्य का जो लोकरंग कार्यक्रम होना है उसके विषय में विस्तार से प्रकाश डालें ?

शर्वेश पाण्डेय जी –देखिये हमारे बौद्धिक कार्य-कलाप सिमट कर रह गए थे । जैसे हम लोग साहित्यिक आनन्द तो लेते थे किन्तु जब हम मीडिया के माध्यम से इसे समाज में लेकर जाते तब समाज में इसका संचार होता है और एक व्यापक प्रभाव खड़ा होता है ।

हैं बहुत दिनों से मेरे मन में था कि जब लोगों के पास पैसा नहीं था तब भी बड़े-बड़े कार्यक्रम होते थे तो आज जब सबके पास पैसा है तो हम मऊ में एक बढ़िया सांस्कृतिक कार्यक्रम क्यों नहीं कर सकते। इसी को लेकर हम साहित्यकार मित्रों ने मिलकर तय किया कि एक बड़ा आयोजन किया जाए तथा पूरे आधुनिक माध्यमों का उपयोग करते हुए इसे लोगों तक पहुँचाया जाये । तो दो दिवसीय कार्यक्रम जिसे हमने अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य संगम नाम दिया है 27-28 फरवरी को होगा। पहला दिन अखिल भारतीय भोजपूरी कवि सम्मेलन तथा दूसरे दिन लोक रंगोत्सव कार्यक्रम होंगे ।

27-28 फरवरी, 2025

देव श्री न्यास

अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य संगम

स्थान :
डी.सी.एस.के.पी.जी.कॉलेज, मऊ
27-28 फरवरी, सायं 4 बजे

27 फरवरी : कवि सम्मलेन

28 फरवरी : लोक रंगोत्सव
(धोबिया एवं गोड़ऊ लोक नृत्य)

सहसंयोजक
डॉ कमलेश राय
वरिष्ठ साहित्यकार

संयोजक/अध्यक्ष
प्रो. शर्वेश पाण्डेय (प्राचार्य)
डी.सी.एस.के.पी.जी.कॉलेज, मऊ

महाकुंभ

परम्परा, गतिशीलता और रचनात्मकता का उत्सव

प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'
वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रसिद्ध भोजपुरी कवि,
नव नालंदा महाविहार सम विश्वविद्यालय, नालंदा

।। एक ।।

महाकुम्भ, एक ऐसा अद्वितीय और ऐतिहासिक आयोजन, जहां भारतीय संस्कृति की गहराई, परंपरा और आधुनिकता का मिलन होता है। यह एक ऐसा अवसर है, जहां लाखों-करोड़ों साधक, श्रद्धालु और कलाकार आते हैं, अपने आस्था के पथ पर चलने के लिए। इस महासंगम की आत्मा में एक अद्वितीय लालित्य और रचनात्मकता समाई हुई है जो हर बार इसे और भी विशिष्ट बनाती है।

महाकुम्भ का स्वरूप एक विशाल लोक मेले जैसा होता है, जहां हर जाति, हर वर्ग और हर विचारधारा का व्यक्ति अपनी जगह बनाता है। यह केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक उत्सव है, जो लोक परंपराओं से लेकर समकालीन संदर्भों तक विस्तारित होता है। लोक मेलों में जो ऊर्जा और उत्साह होता है, वही ऊर्जा महाकुम्भ में भी समाहित होती है।

इस विशाल जुटान में सामान्य जन अपनी भावना और श्रद्धा के साथ उपस्थित होते हैं। यह एक ऐसा संगम है, जहां हजारों वर्षों पुरानी परंपराएं और आधुनिक चिंतन की सहजता एक साथ बहती हैं। साधु-संतों के वक्तव्यों में गहराई है तो वहीं जनमानस की हँसी-मज़ाक और लोकगीतों में भी उसी प्रवृत्ति का दर्शन होता है। महाकुम्भ का यह रचनात्मक पहलू हर बार नए रूप में सामने आता है। यहां केवल साधना या तपस्या नहीं होती बल्कि कला, साहित्य और संगीत भी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। लोक मेला होने के नाते, यहां की कलात्मकता में विविधता और स्थानीयता की झलक देखी जा सकती है। स्थानीय कलाकारों का नृत्य, गीत और वाद्य-यंत्रों की ध्वनि इस आयोजन को और भी आकर्षक बनाती है।

साहित्यिकता भी इस महासंगम का एक अभिन्न अंग है। यहां हजारों कवि, लेखक और विचारक अपनी रचनात्मकता के माध्यम से नए अनुभवों को गढ़ते हैं। विशेषकर काव्य-वाचन, कथा-पाठ और संवादों के जरिए, इस महाकुम्भ की साहित्यिकता और भी गहरी हो जाती है। यह वह स्थान है जहां साहित्य और कला, परंपरा और नवाचार का मिलन होता है। रचनात्मक लेखन की बात करें तो, महाकुम्भ का विस्तृत अनुभव कई लेखकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है। उनकी लेखनी में साधना, लोकजीवन, सामाजिक मुद्दे और आध्यात्मिकता के सम्मिलित रूप सामने आते हैं। यहां घटित घटनाएं, व्यक्ति, प्रकृति और प्रतीकात्मकता, रचनात्मकता को एक नया आयाम प्रदान करते हैं।

यह आयोजन केवल भौतिक दृष्टि से विशाल नहीं है बल्कि इसके भीतर का भाव भी उतना ही विशाल

और व्यापक है। यह एक ऐसा स्थान है, जहां व्यक्ति अपने भीतर के भावों और विचारों को खोलता है। इस प्रकार, महाकुम्भ न केवल बाहर की समृद्धि की ओर संकेत करता है, बल्कि आंतरिक यात्रा और आत्मिक परिपूर्णता की ओर भी अग्रसर करता है। महाकुम्भ का जो संगम है, वह केवल नदियों का नहीं बल्कि विभिन्न विचारधाराओं, संवेदनाओं और संस्कृतियों का भी संगम है। यह ऐसी जगह है, जहां हर किसी का स्वर एक नई ध्वनि में गूंजता है। यहां सांस्कृतिक विविधता अपने चरम पर होती है, जहां हर लोक कथा, हर गीत, हर चित्र और हर भाव एक अनूठी धरोहर के रूप में प्रस्तुत होता है। इस आयोजन का जो उत्सव है, उसमें हर जन अपने समय और स्थान को लेकर एक अनमोल अनुभव प्राप्त करता है। साधारण व्यक्ति यहां अपनी पहचान से ऊपर उठकर एक विशिष्ट श्रद्धालु के रूप में उपस्थित होता है। वहीं, कला और साहित्यकार भी अपने रचनात्मक सोच के माध्यम से इस विशालकाय मेले को और समृद्ध बनाते हैं। महाकुम्भ का यह कलात्मक गद्यात्मकता, जिसे इस विशाल आयोजन के हर पहलू में महसूस किया जा सकता है, सिर्फ एक अवसर नहीं है, बल्कि एक संवेदनशील और सृजनात्मक यात्रा है। यह यात्रा संस्कृति, लोक, कला और आत्मा के बीच के अद्वितीय संगम की ओर संकेत करती है।

।। दो ।।

महाकुम्भ का विस्तार एक ऐसा अनंत अनुभव है जो शब्दों में पूरी तरह समाहित नहीं हो सकता। इसका लालित्य और सांस्कृतिक महत्व हर बार नए रूपों में प्रकट होता है। यह आयोजन केवल आध्यात्मिकता का ही नहीं बल्कि जीवन के हर पहलू का उत्सव है। इस मेले की व्यापकता केवल इसकी भौगोलिक सीमा में नहीं बल्कि उसमें समाहित भावनात्मक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं में है।

जब हम महाकुम्भ की ओर बढ़ते हैं तो सबसे पहले हमें दिखाई देता है इसका अलौकिक सौंदर्य। तड़के सुबह की रोशनी में पवित्र नदियों के किनारे इकट्ठा होते लाखों लोगों का दृश्य एक चित्रात्मक अनुभव देता है। स्नान करते हुए श्रद्धालुओं की भक्ति, गूंजते मंत्रों की ध्वनि और हल्की ठंड में बहती नदी की धारा—यह सब मिलकर एक ऐसा वातावरण रचते हैं, जिसमें व्यक्ति का हृदय अपने आप गहराई में डूबने लगता है।

संगम पर आने वाले हर व्यक्ति का अनुभव अद्वितीय होता है। कोई अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए आता है, तो कोई परंपरा को निभाने। कुछ लोग आस्था के साथ आते हैं तो कुछ लोक संस्कृति का आनंद लेने। यही महाकुम्भ का वह विशिष्ट गुण है, जो इसे सामान्य आयोजनों से अलग बनाता है। यहां हर व्यक्ति अपनी यात्रा का एक अनिवार्य हिस्सा बन जाता है और यह यात्रा केवल बाहरी नहीं बल्कि भीतर की ओर भी होती है।

इस मेले की गद्यात्मकता उसकी गहराई में निहित है। हर घटना, हर व्यक्ति, हर दृश्य एक कहानी कहता है। पंडालों में लगने वाले सत्संग, साधु-संतों के प्रवचन, और लोकगीतों की ध्वनि इस महाकुम्भ को जीवंत बनाते हैं। यहां आने वाले श्रद्धालु अपने साथ अपनी कहानियां लेकर आते हैं और यहां से कई नई कहानियां लेकर जाते हैं।

यह आयोजन कला और साहित्य का भी एक बड़ा केंद्र है। लोक कलाकारों का नृत्य, लोकगीतों की धुन, और विभिन्न प्रदेशों की पारंपरिक कलाएं इस मेले में एक नयी ऊर्जा भर देती हैं। कवि और लेखक यहां से प्रेरणा लेकर अपने शब्दों में इस अनुभव को संजोते हैं। वे महाकुम्भ के दृश्य, ध्वनि और भावनाओं को अपने गद्य और पद्य के माध्यम से अमर बना देते हैं।

महाकुम्भ का मेला केवल श्रद्धालुओं का जुटान नहीं है; यह एक ऐसा मंच है, जहां लोक और परंपरा आधुनिकता के साथ संवाद करती है। यहां हर विचारधारा और हर संस्कृति को एक समान स्थान मिलता है। यह मेल-जोल, जो इतने बड़े पैमाने पर होता है, केवल भारतीय संस्कृति की गहराई को दर्शाता है।

"चलो मन गंगा यमुना तीर"

डॉ धनञ्जय शर्मा, कवि ,
असि.प्रो. सर्वोदय पी.जी. कॉलेज, मऊ

एक सौ चौवालीस बरस बाद लगा महाकुंभ 2025, भारत ही नहीं विश्व का सबसे बड़ा आध्यात्मिक समागम है। गंगा यमुना और अदृश्य सरस्वती के पवित्र संगम पर बसा तीर्थ प्रयागराज ऐतिहासिक ही नहीं अपितु पौराणिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। समुद्र मंथन में जहां देव और दानव मदरांचल पर्वत को मथनी बनकर नाग वासुकी से मंथन किया, जिसमें समुद्र मंथन से निकले चौदह रत्नों में अमृत कलश भी था।

कहा जाता है कि अमृत कलश की कुछ बूंदे प्रयागराज में गिर गई, जिसका उल्लेख रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्यों में मिलता है।
तो ऐतिहासिक दृष्टि से सम्राट हर्षवर्धन प्रत्येक छठे वर्ष महामोक्ष परिषद का आयोजन कराते थे, जिसमें विभिन्न मत मतांतरों, संप्रदायों मठों का आगमन प्रयागराज संगम स्थल पर होता था। एक बार सम्राट हर्षवर्धन इतना दान दिए कि इनके शरीर पर वस्त्र भी नहीं बचा, पत्तों से अपना तन ढक कर अपनी बहन से वस्त्र मांगना पड़ा। ऐतिहासिक दृष्टि से लगभग सातवीं शताब्दी ईस्वी से आज तक कुंभ की महत्ता बनी हुई है।

आज भी विभिन्न मत मतांतरों के साधू, सन्यासी, गार्हस्थ, किन्नर, नाग, यक्ष,देव तथा मानुष लोक और आस्था के महाकुंभ में एक साथ डुबकी लगाते हैं। महाकुंभ के महत्व की बात सामाजिक समरसता है। लोक और आस्था का महापर्व कुंभ भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर है। जहां लोक और शास्त्र का संगम होता है तो सूक्ष्म और स्थूल का मिलन बिंदु भी है, जहां से आस्था का जन्म होता है। यह मूर्त है अमूर्त भी है, आधा दृश्य तो आधा अदृश्य है। आधा जल में है तो आधा थल मे आधा संध्या में आधा प्रभात में, आधा दिवा में तो आधा रात में। आधा तंत्र में है आधा मंत्र में आधा समाधि में तो आधा शून्य में है।

यहां के रहवासी भी आधा गार्हस्त में हैं तो आधा ब्रम्हचर्य में। आधे – आध मे बसा कुंभ हर बारह वर्ष बाद अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। यहां स्थावर भी हैं जंगम भी, संस्था भी हैं तो संचारा भी हैं। सच पूछिए तो यह ज्ञान और चेतना का केंद्रीय बिंदु है जिसकी परिधि पर लोक जनमानस भारत के विभिन्न मत मतांतरों से संगम करता हुआ सनातन की प्राचीन परंपरा में डुबकी लगता है।

यहां शैव हैं, वैष्णव हैं शाक्त हैं, सिद्ध है, कापालिक हैं, तो नाथ हैं, निर्गुण हैं, नागा हैं, निरंजन भी हैं । बहरहाल जो भी है यह लोक आस्था की खिचड़ी है। खिचड़ी के पर्व से शुरू होकर बसंत से समापन होता है। पूरा मेला खिचड़ी खाता भी है और मानता भी। जब सूर्य मकर रेखा को पार करता है तो इंगला पिंगला और सुषुम्ना का आज्ञाचक्र की त्रिवेणी में संगम होता है। सामाजिक समरसता महाकुंभ का महान संदेश है, जिस जल में राजा डुबकी लगता है उसी जल में प्रजा भी डुबकी लगाती है ।

परिचय दास जी की कवितायेँ

हिंदी,मैथिली,भोजपुरी के वरिष्ठ कवि प्रो. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' जी अद्वितीय लेखक हैं, साथ ही वर्तमान में नव नालंदा महाविहार समविश्विद्यालय में कार्यरत हैं ।

प्रेम

उसका प्रेम स्रष्टा का था
वह सृजन कर रही थी
वह अंतरिक्ष में उड़ना चाहती थी

स्त्री प्रेम में थी
और पुरुष कामना में
वह चाहती थी अर्चना बने
पुरुष ने उसे उपभोग बना दिया।
वह सौंदर्य थी
पुरुष ने उसे संपत्ति बना दिया।

स्त्री की आँखों में प्रेम की नमी थी
पुरुष ने उसे एक ज्वाला बना दिया।
स्त्री के अधरों पर गीत थे
पुरुष ने उन्हें एक शिथिल मौन में बदल दिया।
स्त्री सृष्टि थी
पुरुष ने उसे शय्या बना दिया।

जब प्रेम ने प्रश्न किए
पुरुष ने उत्तर नहीं दिए।
वह तृप्त होकर सो गया
और स्त्री एकांत में जागती रही।
वह पुरुष के लिए एक रात थी
पुरुष उसके लिए अनंत था।

एक दिन–
स्त्री ने स्वयं को खोजा,
अपने भीतर–
जहाँ प्रेम था
पराधीनता नहीं।
जहाँ गहराई थी
आत्म-विसर्जन नहीं।

वह प्रेम थी–
आकाश की अनंत नीलिमा में
एक रंगहीन परछाईं की तरह
जो स्वयं में समा सकती थी,
वह प्रेम थी–

एक उजली अनुभूति,
जिसमें देह से परे आत्मा की गहराई थी।

पर पुरुष उसे देह बनाना चाहता था,
एक हथेली पर रखी वस्तु की तरह,
जो केवल पकड़ने के लिए बनी हो,
जिसे समय-समय पर मरोड़ा जा सके,
और फिर छोड़ दिया जाए–
एक निर्जीव स्मृति की तरह।

स्त्री हारी नहीं थी
वह प्रेम को जी रही थी
सांसों में, धड़कनों में
एक शब्दहीन प्रार्थना की तरह
जिसमें कोई आकांक्षा नहीं
सिर्फ पूर्णता थी।

किन्तु पुरुष उसे आधा कर देना चाहता था
उसके प्रेम को
एक भूख बना देना चाहता था
एक ऐसी चाह
जो उसकी आकांक्षा की पूर्ति के लिए हो
जो प्रेम की आत्मा से अधिक
तन की आवश्यकता पर टिकी हो।

स्त्री ने प्रेम में पिघलकर
खुद को दिया था
पुरुष ने उसे लेकर
उसे खाली कर दिया था।

स्त्री ने चाहा था कि प्रेम
समंदर की तरह विस्तृत हो
पुरुष ने उसे किनारे पर ला छोड़ा–
एक अस्थिर लहर की तरह
जिसका अस्तित्व
सिर्फ उत्थान और पतन में हो।

स्त्री जब प्रेम करती है,
वह अपना समस्त समर्पण
अर्पित कर देती है,
वह असीम बन जाती है
उसका प्रेम
सिर्फ़ हथेलियों में समाने वाला नहीं होता
उसका प्रेम
मन के उस कोने तक पहुँचता है
जहाँ भाषा की कोई सीमा नहीं।

पर पुरुष के लिए प्रेम
एक इच्छा की पूर्ति है
एक आवेग की धारा
जो समय के साथ
शांत हो जाती है,
स्त्री के भीतर उठती
तरंगों को अनदेखा कर।

स्त्री ने चाहा था कि प्रेम
सिर्फ देह से न जुड़ा रहे,
बल्कि आत्मा की गहराइयों तक पहुँचे
पुरुष ने प्रेम को एक ज्वर की तरह जिया
जो आया, बढ़ा
फिर धीरे-धीरे उतर गया।

स्त्री के लिए प्रेम
एक गीत था

जिसे वह बार-बार दोहराना चाहती थी
पुरुष के लिए प्रेम
एक स्वर था
जो सिर्फ एक बार गूंजकर
मौन में बदल गया।

स्त्री के रोम-रोम में प्रेम था
पुरुष की नसों में वासना।
स्त्री के लिए प्रेम
एक निर्बाध यात्रा थी
पुरुष के लिए प्रेम
एक ठहराव
जहाँ से आगे बढ़ जाना था।

जब पुरुष ने कहा,
"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ,"
स्त्री ने उसे आँखों में बसा लिया,
जब स्त्री ने कहा,
"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ,"
पुरुष ने उसे देह में खोजा।

स्त्री ने प्रेम को
एक अनुभूति की तरह देखा
पुरुष ने उसे
एक प्रक्रिया की तरह।

पुरुष के लिए प्रेम
सपनों में आया एक क्षण था,
जिसे जागते ही भूल जाना था
स्त्री के लिए प्रेम
एक स्मृति थी
जो सोते-जागते जीवंत बनी रही।

स्त्री को लगा
उसने प्रेम को चुन लिया है
पर धीरे-धीरे एहसास हुआ–
पुरुष ने सिर्फ देह को चुना है
प्रेम को नहीं।

स्त्री चाहती थी
एक ऐसा प्रेम
जो समय से परे हो
जो दैहिक सीमाओं से आगे निकले
जो न केवल रात के अंधेरे में जिया जाए,
बल्कि दिन के उजाले में भी पहचाना जाए।

पुरुष ने प्रेम को
एक क्षणिक अनुभूति बना दिया
एक ऐसा आवेग
जो आकर चला जाता है
एक ऐसी क्षुधा
जो तृप्त होकर
फिर भूख में बदल जाती है।

स्त्री ने सोचा–
क्या प्रेम यही है?
क्या प्रेम सिर्फ एक देह की यात्रा है?
क्या प्रेम का कोई अंत नहीं होता
सिवाय रिक्तता के?

स्त्री के लिए प्रेम
उजास था, विस्तार था
पुरुष के लिए प्रेम
एक आवरण था
जो समय के साथ उतर गया।

स्त्री ने अपने प्रेम को
समेट लिया अपनी आत्मा में
उसने उसे पुनः गढ़ा
अब वह प्रेम करती है
स्वयं के लिए।
अब वह जान चुकी है
कि प्रेम तब तक पवित्र है
जब तक वह स्वतंत्र है।
अब वह जान चुकी है
कि प्रेम तब तक अनंत है
जब तक वह आत्मा से उपजता है।
अब वह प्रेम करती है
किन्तु समर्पण में नहीं
अब वह प्रेम करती है
पर अधीनता में नहीं।
अब वह प्रेम है–
एक नदी की तरह
जो बहती रहेगी
बिना किसी बाँध के
बिना किसी बंधन के।

दिल के कागज पर आंसुओं की स्याही

डॉ विकास दवे
निदेशक, साहित्य अकादमी
मध्य प्रदेश शासन, भोपाल

आदरणीया नमिता राकेश जी का सद्य प्रकाश्य काव्य संग्रह मेरे हाथों में है। सौ पृष्ठों में सिमटी इन 85 कविताओं में नमिता जी ने अपने हृदय की निजी अनुभूतियों से लेकर देश, समाज और संपूर्ण सृष्टि के विषयों को इन कविताओं में गूंफित करने का प्रयास किया है। प्रथम रचना पिता को समर्पित कर उन्होंने अपने पारिवारिक नेह अनुबंधों को सर्वोपरि रखने का संकेत दे दिया। सचमुच पिता का नहीं होना यानी जीवन का बिना छत के घर जैसा हो जाना होता है। अन्य कविताओं में वे बहन, बेटी और परिवार के हर उसे रिश्ते को उकेरने का प्रयास करती हैं जो रिश्ते भारतीय समाज के आधारभूत तत्व हैं। नमिता जी अपने निजी जीवन में राजपत्रित अधिकारी और कुशल प्रशासनिक अधिकारी रही हैं। राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ा उनका संपूर्ण जीवन देश और समाज को समर्पित रहा। यही कारण है कि उनकी लेखनी से कभी भी राष्ट्रीय चेतना ओझल नहीं होती। एकात्म मानव दर्शन का अध्ययन करने पर हमारे ध्यान में आता है कि व्यष्टि से समष्टि तक हम सभी एक दूसरे से अखंड मंडलाकार स्वरूप में जुड़े हुए हैं। कोई भी तत्व किसी दूसरे तत्व से विरक्त नहीं है। ठीक यही भाव नमिता जी की रचनाओं में हमें बार-बार परिलक्षित होता है।

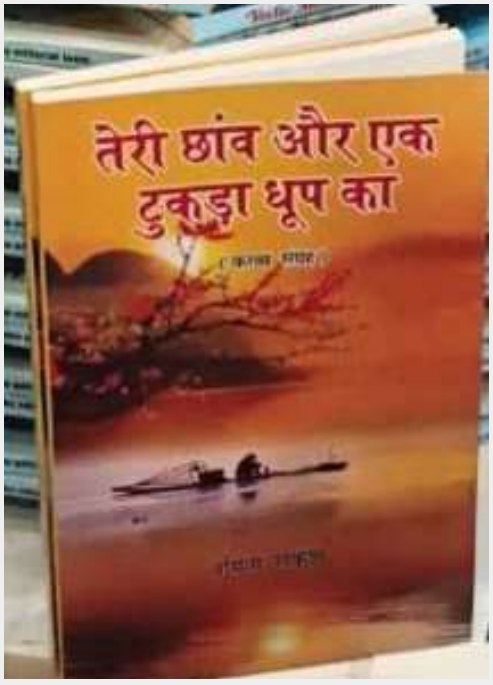

व्यक्ति से परिवार बनता है, परिवार से समाज, समाज से देश और यह देश संपूर्ण जगती का हिस्सा बन जाता है, संपूर्ण जगती प्रकृति का भाग है तो यह प्रकृति भी ईश्वरीय परम तत्व का अंश मात्र है। इस संपूर्ण यात्रा को हम नमिता जी की कविताओं में पंक्ति दर पंक्ति सहज सरल ढंग से प्रवाहित होते देखते हैं। वह अपनी कविताओं में पेड़ों के ठूंठ हो जाने और कटने की चिंता भी व्यक्त करती हैं तो कभी वह एक सामान्य सी भारतीय लड़की के दायित्व बोध को रेखांकित करती भी नजर आने लगती हैं।

हाँ यह अवश्य है कि उनके द्वारा लिखी गई श्रांगारिक रचनाओं में एक प्रेयसी का आदर्श स्वरूप भी अत्यंत सहज ढंग से प्रकट होता है। नायिका जब यह कहती है कि मैं तुम्हें अपनी आंखों से ओझल करने के लिए अपनी आंखें बंद करती हूं तो तुम्हें अपने भीतर पाती हूँ तो सचमुच प्रेम का यह जीवन मूल्य भारतीय परंपरा का मूल्य बनकर स्थापित होता है। यही कारण है कि हमारा प्रेम देहोपरि होकर विशुद्ध आत्माओं के मिलन का प्रतीक बनकर उभरता है।

चंद्रयान के बहाने वे देश की उपलब्धियां को रेखांकित करना नहीं भूलतीं तो दूसरी ओर वे बांसुरी के छिद्रों से निकलते स्वरों की कारुणिक कथा कहती भी नजर आती हैं। नमिता जी की कवितायें मनुष्य जीवन के आसपास टहलती सी नजर आती हैं। दैनंदिन जीवन के प्रतिकों को ईंटों की तरह चुनते हुए वह कविता का एक अनूठा घरौंदा तैयार कर लेती हैं।

आधुनिक साधनों और वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर अत्यधिक पड़ता है। यही कारण है कि सोशल मीडिया ने मनुष्य जीवन को चारों ओर से जकड़ कर रख लिया है। ऐसे में नमिता जी की एक कविता में जब मनुष्य जीवन की संवेदनशील स्मृतियां सोशल मीडिया की शब्दावली में प्रकट होती है तो एक नया भाव संसार रच देती है। अपने रिश्ते, अपने परिवार और संबंधों की उष्मा को बचाए रखने के लिए छटपटाती स्त्री के मनोभावों को नमिता जी ने बड़ी कुशलता से इस रचना में परोसा है। इस काव्य संग्रह का अंत एक अत्यंत भावुक परिदृश्य से होता है। जब रचनाकार तारों से उनकी चमक का कारण पूछते हुए यह जिज्ञासा प्रकट करती हैं कि वह इतने उजले कैसे हो गए? उत्तर में तारे जब यह कहते हैं कि वह उन लोगों के आंसुओं में नहा कर आए हैं जिन्हें आवश्यकता का पानी तक नहीं मिलता तब उनकी इस अनूठी प्रतीक योजना पर हृदय न्योछावर हो उठता है।

बाबा रहीम जब पानी उतरने की बात कहते हुए मोती, मानुष और चून को निष्प्रभ बताते हैं तब लगता है कि कैसे तारे अपना पानी बचाने के लिए पानी के बगैर जीवन के लिए छटपटाती मानव जाति से उनके आंसुओं का पानी उधार ले रहे हैं।

नमिता जी को मैं उनके नवीन काव्य संग्रह के लिए ढेर सारी बधाइयां देता हूँ।

वह अपने निजी जीवन में जितनी सहज सरल हैं उतनी ही सहजता, सरलता उनकी रचनाओं में भी होती है। हाँ!! विद्रूपताओं और विकृतियों का विवरण देते- देते कभी-कभी यह भ्रम अवश्य होता है कि सदैव हँसती मुस्कुराती रहने वाली नमिता जी इतनी गंभीर रचनाएं कैसे लिख लेती हैं? किंतु ध्यान में आता है एक संवेदनशील रचनाकार अपनी लेखनी में मसी अर्थात स्याही नहीं अश्रु डालकर कविताएं लिखता है। बधाई नमिता जी ऐसे ही लिखती रहिये।

पंडित भीमसेन जोशी जी की स्मृति में

सुर मे एकता

जो भजे हरि को सदा,
सो ही परम पद पावेगा"
"जो भजे हरि को सदा,
सो ही परम पद पावेगा
सो ही परम पद पावेगा"
गाना सुनते ही याद आते
भीमसेन जोशी जी गाते
रेडियो और दुरदर्शन मे
सबको भक्ति रस बाँटते ।

बचपन में धारवाड़ के
छोटे से शहर रोन में
लोकगायकों और वाद्यमंडलियों
के पीछे मोहित भागे चले जाते
संगीत सुनते हुए मीलों चलते
थककर कहीं भी सो जाया करते ।

11 साल की उम्र मे घर छोड़ते
अगले तीन साल तक गुरु
की खोज में बीजापुर, पुणे,
ग्वालियर, दिल्ली, कलकत्ता,
लखनऊ, रामपुर की खाक छानते
बिना पैसे के रेलवे में
बिना टिकट यात्रा करते
टिकट चेकर्स और यात्री
उनके मधुर गीत से प्रभावित होते
सारा खर्च मिटा देते
कमाई के लिए कोलकाता में
पहाड़ी सान्याल के घर में
रसोइया का काम करते।

फ़िल्म 'बसंत बहार' में उन्होंने
पार्श्व गायक मन्नाडे के साथ
"केतकी गुलाब जूही"" गाया
दर्शको ने बिल्कुल अलग ही
बेहतरीन श्रृंगार रस पाया ।

मिले सुर मेरा-तुम्हारा,
तो सुर बने हमारा
जब यह गीत दूरदर्शन पर होता ,
एक अलग ही माहौल हो जाता
लोग मंत्रमुग्ध खड़े हो जाते
राष्ट्रीय एकता के भाव से भर जाते।

सुबीर कुमार भट्टाचारजी
कोलकाता, प.बंगाल

नमिता राकेश
राजपत्रित अधिकारी,वरिष्ठ साहित्यकार
नई दिल्ली

हे मधुमास ! ज़रा ठहरो

हे मधुमासः जरा ठहरो
थोड़ा रुक कर आना
मेरे प्रियतम परदेश गए हैं
वो आ जायें तब आना

देखो तपते अधरों पर एक प्यास रूकी है
और व्याकुल अन्तस में भी इक आस जगी है
इस प्यासी अगन की प्यास बुझाने
जब मेरे प्रियतम आ जायें
तब आना
हे मधुमास ! जरा ठहरो....

देखो अभी सोलह श्रृंगार किया है
घर आंगन मन-उपवन तैयार किया है
फूल बिछाकार राहों पर इंतजार किया है
इन जगते नयनों से नयन मिलाने
जब मेरे प्रियतम आ जायें
मुझ पर बादल से छा जायें
तब आना

हे मधुमास! जरा ठहरो....

हे मधुमास !

जब प्यार बसा हो कण-कण में
तब कोई ऋतु की कैद नहीं
बेमौसम भी आ जाता है
मधुमास तुम्हारी यादों का

जब प्रिय बस हो रग-रग में
जब इन्द्रधनुष हो नस-नस में
मधुमास मलय से भरी पवन
देती हो सुप्त झकोरे से
जब फाग बसा हो धड़कन में
संगीत रचा हो तन-मन में
जब मन में एक अंगड़ाई हो
और देह में एक तरुणाई हो
जब प्रिय बैठे हों पहलू में
और प्राणों में सरसों फूली हो
तब कोई ऋतु की कैद नहीं
बेमौसम भी आ जाता है
मधुमास तुम्हारी यादों का

मनोज कुमार सिंह
उप-सम्पादक कर्मश्री मासिक पत्रिका
घोसी, मऊ, उ.प्र.

कविता - नये मकान

नयें मकानों में भी कुछ यादें पुरानी होनी चाहिए-

खिलखिलाती मुस्कराती जिन्दगानी होनी चाहिए,
हर शहर का मौसम, हर त्रृतु सुहानी होनी चाहिए ।

राहे-ए-मंजिल पर फ़ौलादी इरादों से पॉव रक्खो
मील का पत्थर बने या कोई निशानी होनी चाहिए।

अमन, ईमान ,वतन और ऊसूलो पर मर मिट जाए ,
हर धड़कते सीने में ऐसी ही जवानी होनी चाहिए।

महबूब या मातृभूमि पर जो फना हो गये दिवाने ,
उनकी हर कहानी किस्से मुहजबानी होनी चाहिये।

भीड़ में गुमनाम हो जाना जॉबाज की नाकामी है ,
कदमों में दुनिया बदलने की रवानी होनी चाहिए।

चुनौतियों से भरपूर रास्ता ही सबसे खूबसूरत है,
चुनौतियों से लडने की अमर कहानी होनी चाहिए।

दुःख दर्द में हिस्सेदारी का एहसास करे हर इंसान,
महकता ऑगन और फिजाऐं मस्तानी होनी चाहिए।

नई हवाओं के रंग में ढल जाना दौर की लाचारी है,
नये मकानों मे भी कुछ यादें पुरानी होनी चाहिए।

प्रणय गीत

तुमको हल करता हूँ जिंदगी के हर उलझे सवालों की तरह

तुमको हरदम, हर पल, हर घड़ी चाहा है मैंने
अपने ईमान, धर्म, मज़हब पक्के उसूलों की तरह ।।

तुम हरदम खिलें रहते हो, मेरे दिल के दोआब में ,
चम्पा, चमेली, गेंदा और गुलाब के फूलों की तरह।।

तुम रहते हो मेरे खेत,खलिहान और सिवानों में,
हंसती, मुस्कराती, लहराती फसलों की तरह।।

तुम्हारी चंचल चितवन, अंगड़ाई, नज़ाकतो को,
ढाला है मैंने अपनी खूबसूरत गज़लों की तरह।।

तुम्हारा हंसता-खिलखिलाता यौवन हर पल जीवंत है
मेरी धड़कनो, सांसों में नदी के हिचकोलों की तरह।।

तेरे बदन की हर लिखावट,अदाओं की हर करवट
बेसुध पढ़ता हूँ भूखे पेटों की निवालोंकी तरह ।।

जिंदगी के सफर में थक कर चूर मायूस एहसासो को,
सहलाते हो अपने लम्बे,खूबसूरत,रेशमी बालों की तरह।।

यूं तो पढ़ता -पढाता रहता हूँ ,इतिहास भूगोल अर्थशास्त्र,
तुमको हल करता हूँ जिंदगी के हर उलझे सवालों की तरह।।

प्यार, मुहब्बत, इबादत हर दौर का फलसफा और अमानत है
खड़ा हूं मुहब्बत की रवायतों में खंडहर की दीवालों की तरह।।

जबसे उतरे हों मेरे हृदयांगन में, चौदहवीं का चाँद बनकर
संगीत बनकर गुनगुनाते हों मेरे हंसीं रंगीन ख्यालों की तरह।।

रोमिता शर्मा
करसोग, हिमाचल प्रदेश

कविता - एक सत्र और

नये सत्र के सपने संजोये
खिलते बुरांश के फूल की तरह
अपनी आंखो बच्चे देख रहे मौसमी सपने
नई किताबें,छलनी बस्ते की सिलाई
वही बस्ता जो दो सालों से पीठ पर ढ़ो रहा
फिर बाबा किताबों का वादा तो किये
पर बस्ते के अस्तित्व पर लगा गये प्रश्न चिन्ह?

कुछ और सहपाठी नये बस्ते,नये जूते पहने
नये स्कूल की ओर गुज़र रहे घर के सामने से
अम्मा! क्या इसी स्कूल में पढ़ाई होनी है
जब बड़े पूजा घर जाकर भगवान की
स्तुति करना अच्छा समझती हो
बड़ा स्कूल भी तो वही मंदिर है ?

मां ने कभी देखी नहीं थी स्कूल की देहरी
बस तुलना ही की थी,समझा था मंदिर।
यह यक्ष प्रश्न उसे छलनी कर गया
अबोध जुबां पर कैसे बैठा था यह
चुपचाप अपना सा उदास शब्द लिए शांत प्रश्न।
अपनी सशक्त पीठ पर गृहस्थी को
समय के 'किलटे' में ढ़ोते हुए
सरकारी योजनाओं की सर्द मार में

कापियां,पैन ,पेंसिल,किताब तो
लाला की बही में लिख रखी हैं,
इस बार की फसल में सब चुकता होगा
लाला का बचा हुआ हिसाब
जितना चुकता हुआ उतना फिर बाकी है।

फसल अच्छी हुई, भाव लाला की मनमर्जी है
शिक्षा की ही तरह
पहले दर्जे से चलता कर्ज
बारहवें दर्जे पर भी चलता जा रहा है,
बाबा बस मुस्कुराए जा रहे
अब कोई सवाल बचा नहीं बाकी
कि बाबा से क्या पूछा जाए -
लाला बही में नाम तलाशता जा रहा है और
बच्चे रोज़गार की राह देखते जा रहे हैं।

डॉ धनञ्जय शर्मा
असि.प्रो. सर्वोदय पी जी कॉलेज
घोसी,मऊ

स्त्रियाँ

स्त्रियाँ
स्त्रियां बेची जाती हैं,
स्त्रियां खरीदी जाती हैं
स्त्रियों का एक बड़ा बाजार है
स्त्रियों के बड़े बड़े खरीददार हैं
जैसे पिता चाचा भाई बेटा ताऊ
रिश्तों में बस स्त्री ही बिकाऊ
गोरी काली लंबी छोटी
इंच दर इंच वजन नापकर
दिया लेबल वस्तु बनी मापकर
कारपोरेट मे बढ़ी प्रस्तुति
भेंट दी जाती है सल्तनत में द्रौपदी

कविता - तपन

आंखों ने छुपा रखा था
नीद का बादल
बादल ने छुपा रखा था
आंख का पानी
पानी ने छुपा रखा था
हृदय का ताप
ताप ने छुपा रखा था
जीवन का भाप
भाप ने छुपा रखा था
मौसम की गर्मी
मौसम ने छुपा रखा था
धरती का तपन
तपन से मैं पिघल रहा था भीतर तक
ग्लेशियर की तरह
और एक दिन डूब गया
बढ़े हुए जलस्तर में
सागर के।।

बृजेश गिरि

प्रवक्ता, जैश किसान इंटर कॉलेज
घोसी, मऊ उ.प्र.

कविता - निर्वासन का दंश

परिन्दे
सुबह निकलते हैं
आशियानों से
जुगत में पेट भरने की
दिनभर की भाग-दौड़ के
बाद
शाम को लौट आते हैं
"जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी
पुनि जहाज पै आवै।"

लेकिन कई बार
निर्वासन का दंश भी
झेलना पड़ता है
और सदैव के लिए
दूर हो जाना पड़ता है
अपनों से।

अजनबी शहर में
एक अजनबी की जिन्दगी
पड़ती है जीनी
परिन्दों को ही नहीं
इंसानों को भी।

फिर
कितना खौफनाक होता होगा
अंत में
पराई जमीन पर
अजनबी की मौत
मर जाना
ये
कितनी अजीब
बात है न?

('परिन्दे' कहानी को पढ़ते हुए)

कविता - मैं कौन हूँ?

मुझे
तुम्हारी सहानुभूति
और प्यार
नहीं चाहिए
मुझे तुम्हारी दया
और
सत्कार भी
नहीं चाहिए
मुझे पाप-पुण्य का झमेला
और
ये भीड़ का मेला भी
नहीं चाहिए।

ऐ दुनिया के विद्वान
और
कामयाब लोगों
मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो
मैं कौन हूँ?
इस सवाल पर छोड़ दो
मैं ढूंढ लूँगा
खुद को
अपने वजूद को।

तुम्हारी आलोचनाओं और
प्रशंसाओं का
मैं क्या करूँ?
तुम्हारी
बन्नरघुड़कियों
से कब तक डरूँ?

तो अब
कान खोलकर सुन लो
मैं फिर कहता हूँ
मुझे मेरे हाल पर
छोड़ दो
मैं कौन हूँ?
इस सवाल पर छोड़ दो!

सूरज द्विवेदी 'भगीरथ'
असि.प्रो. डी.सी.एस.के. महाविद्यालय मऊ

कविता - नया भगीरथ

मेरी किताबों की आलमारी में
एक गंगाजल का डिब्बा रखा हुआ है
किताबों के सहारे इक किताब की तरह
कुछ किताबों पर झुक कर टिका हुआ है।

आज स्टडी टेबल पर
एक किताब खोले बैठा था
दाहिनी तरफ़ लैपटॉप खोले बैठा था
एक महिला यू ट्युब पर
समाजशास्त्र का परिचय बता रही थी
मतलब परीक्षा की तारीख़ क़रीब आ गयी थी।

मेरी निगाह अब लैपटॉप से क़तरा गई
आलमारी में रखे गंगा जल से जा टकरा गई।
गंगा में किताबों को कई बार बहते देखा है
किताबों के बीच गंगा को पहली बार देखा है।

गंगा कह रहीं थीं इक बार उठाओ मुझे।
किताबों की तरह इस पार से उस पार पढ़ जाओ मुझे।
मैं तुम्हारी सभ्यता संस्कृति की जान हूँ।
बेटे मुझे पहचान,मैं तेरी पहचान हूँ।
मुझको ज़मीं पे लाया गया था पाप धुलने के लिए
लोगों ने दुरुपयोग किया ज़हर घुलने के लिए

पाप तो सारे मैं फिर भी धुल आई
भोले तुम्हारे लिए ज़हाँ से गरल ले आई।

उल्टी बहे गंगा ऐसा यत्न चाहिए
मुझको एक नया भगीरथ चाहिए।

कविता - सुगबुगाहट

यहां कैसी सुगबुगाहट है
कुछ तो अभी-अभी हुआ है

बाती की सुगंध बता रही है
दिया अभी-अभी बुझा है

आंधी तूफ़ां तो कुछ भी नहीं
दिल का दौरा बुरी बला है

ज़रा बादल की लाली देखो
सूरज अभी-अभी ढला है

क्या हो गया है कुछ तो बोलो
ये चेहरा क्यों गिरा हुआ है

ये गीली पलकें बता रही है
समंदर अभी-अभी थमा है

नहीं नहीं कुछ हुआ नहीं है
ये तो तुम्हारी वही अदा है

टपकता लहू तो बता रहा है
कि तीर अभी-अभी लगा है

जितेन्द्र मिश्र 'काका'

वरिष्ठ कवि, मऊ

कोयल मीठी तान सुनाई,
फागुन आया है।
बोल उठी मादक पुरवाई,
फागुन आया है।

खेतों की हरियाली,
पीली,सरसो का हंसना।
यौवन चढ़ता हरे मटर पर,
होता प्रौढ़ चना।

अरहर की बांछें खिल आई,
फागुन आया है।::::::

पेड़ों की हर डाल पवन की,
बाहों में झूमें।
तितली - भंवरे बेसुध हो मुख,
फूलों के चूमें।

दृश्य देख कलियां शरमाई,
फागुन आया है।:::::

आम्र मंजरी से रस टपके
फूले सघन पलास।
मोर पपीहा वन-वन घूमें
चातक सा ले प्यास।

गूंजी किलकारी अंगनाई,
फागुन आया है।

डर लगता है इस गहराती रात से....
कि साथ बैठो ज़रा
दिल धड़कता है ज़ोर ज़ोर कि
तुम्हारी कमीज़ का कोना पकड़ के
इंतेज़ार करें सूरज के उगने का ....

हाड़ कंपकपाती इस सर्दी में
थम न जाए साँस मेरी
कि साथ बैठो ज़रा
तुम्हारी सच्चाई की गर्मी के साए में
इंतेज़ार करें सूरज के उगने का....

कल सुबह से इंतेज़ार था तुम्हारा
कि गले से उतरा नहीं इक निवाला
कि साथ बैठो ज़रा
तुम्हारी बातों की मिठास में
इंतेज़ार करें सूरज के उगने का.....

सच कहते हो तुम
रात कितनी ही गहरी हो
शाश्वत , पवित्र मेरी तुम्हारी
प्रीत के उजास में
इंतेज़ार करें सूरज के उगने का ...

कि साथ बैठो ज़रा
कि साथ बैठो ज़रा

धारिणी धरित्री

लखनऊ , उ.प्र.

अनिता रोहलन "आराध्यापरी "
जयपुर, राजस्थान

कविता- स्त्री

एक स्त्री को
उम्र सोलह, सत्रह की हो गई,
ब्याह के लायक हो गई,
घर की जिम्मेदारियां सिखाओ
ससुराल का रास्ता दिखाओ

जरा सलीके से बैठो
तुम्हारी आवाज इतनी ऊंची क्यो है
यह तुम्हारे कपड़े इतने छोटे क्यों हैं
तुम्हारी पायल, बिछिया, बिन्दी कहाँ है ?

हमेशा इन्ही विचारों से नवाजा गया है
एक स्त्री को
कभी उसके धैर्य, साहस, दया को
तुमने देखा ही नहीं,
बस उसकी खुबसूरती,
उसकी बिन्दी, झुमका, पायल,
इन सब पर ही मरते हैं सब
हर बार उसे अर्थहीन समझा गया
फिर भी वो हर राह पर
सबको अनर्थ से बचाती है

क्यों उसे चरित्र से ही पहचाना जाता है
क्या एक स्त्री के पास ही चरित्र है ?
क्या बाकी सारे मर्द चरित्रहीन है ?

ग़ज़ल - अब क्या कहूँ

महफिलों में चश्म-ए-नम दिखता नहीं,
अब क्या कहूँ ।
जब्त-ए-ग़म का सिलसिला रुकता नहीं,
अब क्या कहूँ ।।

चीथड़े कर आँचलों को,
भीड़ में जो छुप गए ।
जानवर हैं आदमी के भेष में,
अब क्या कहूँ ।।

मरघटों में बेमुरव्वत
सेंकते थे रोटियाँ ।
बन गए हैं वो हमारे रहनुमा,
अब क्या कहूँ ।।

इंक़लाबी बोल थे,
बदलाव की गुंजाइश भी थी ।
आग की तासीर ठंडी हो गई,
अब क्या कहूँ ।।

कितने किस्से मर गए बेवक्त,
लफ्जों के बगैर ।
कैदखाने में तड़पती है जुबां,
अब क्या कहूँ ।।

अविनाश पाण्डेय
अभिनेता, नाट्यकार, कवि
वाराणसी, उ.प्र.

अनिल कुमार पाण्डेय
गाजीपुर, उ.प्र.

ख्वाब में जीते हैं हक़ीक़त में मर जाते हैं
लोग कुछ हैं, कुछ और नज़र आते हैं

बता दे कोई तो मंज़िलों का पता
हमें मालूम नहीं रास्ते किधर जाते हैं

और कुछ दूर तक, चल नहीं सकते
थके ये पांव,जमीं पर ठहर जाते हैं

गुलाब हाय!कितने बड़े हैं बदकिस्मत
सुबह खिलते हैं औ शाम बिखर जाते हैं

खौफ का साया उस ओर पसर जाता है
क़ाफ़िले मौत के,बस्ती में जिधर जाते हैं

मुनासिब नहीं है रुकना शहर क़ातिल है
दिल के कमज़ोर हैं हर चीज से डर जाते हैं

बारिशें जम के हुई खाद भी डाली गई
खेत फिर भी क्यों खाली नज़र आते हैं

बदल गया रिवाज आज इस जमाने का
ज़नाज़े में भी कुछ लोग मुस्कुराते हैं

अल्फाज़ रोते भी हैं बड़े करीने से पवन
अश्क़ बनकर आँखों से निकल जाते हैं

कविता- बसंत पंचमी

बहार लाई है बसन्त पंचमी, आओ झूमें गायें
संस्कारों की रास मिलाकर, ये उत्सव मनायें

बसन्त देखकर होता, सबका दिल खुशहाल
धरती होती हरियाली से, कितनी मालामाल

रंग बिरंगे पुष्पों से, कितनी खुशबू फैलाती
देखकर ये खुशहाली, उदासी गुम हो जाती

अपने हृदय आंगन को, हम हराभरा बनायें
दिव्य गुणों के पौधे, मन की धरा पर उगायें

प्यार जगायें सबके प्रति, सबको दें सम्मान
हमारे कर्मों को देखकर, नाज़ करे भगवान

हर अवगुण त्यागकर, दिव्यता को अपनायें
अपने जीवन को हम सब, देव तुल्य बनायें

दिव्य गुणों से ही, जीवन में खुशियां आएगी
यही दिव्यता सारे, संसार को स्वर्ग बनाएगी

मुकेश कुमार मोदी
बीकानेर, राजस्थान

फरवरी
2025

चित् भूमियां

वि वे क मि श्रा

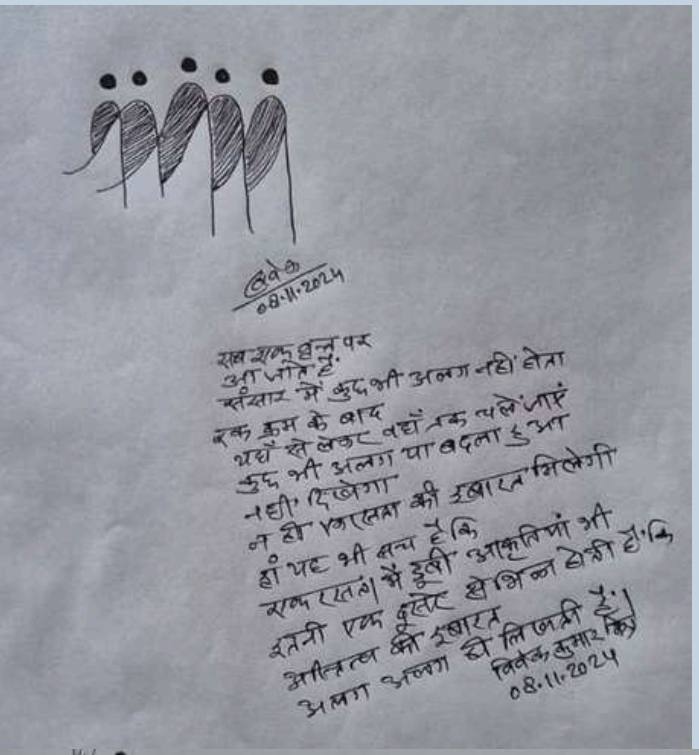

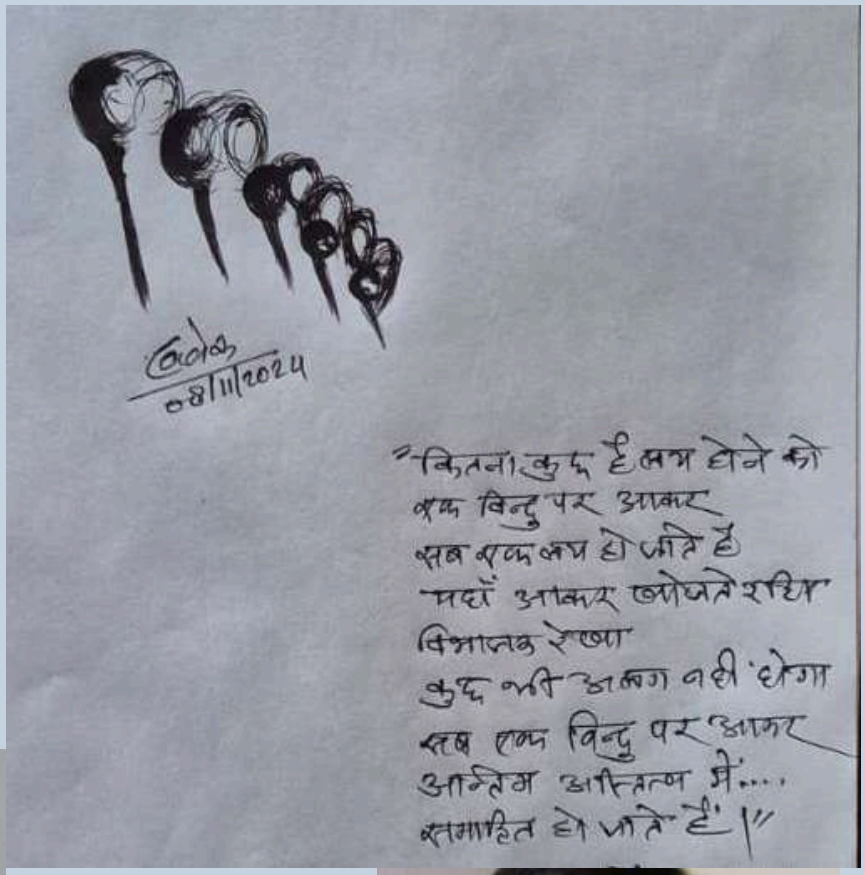

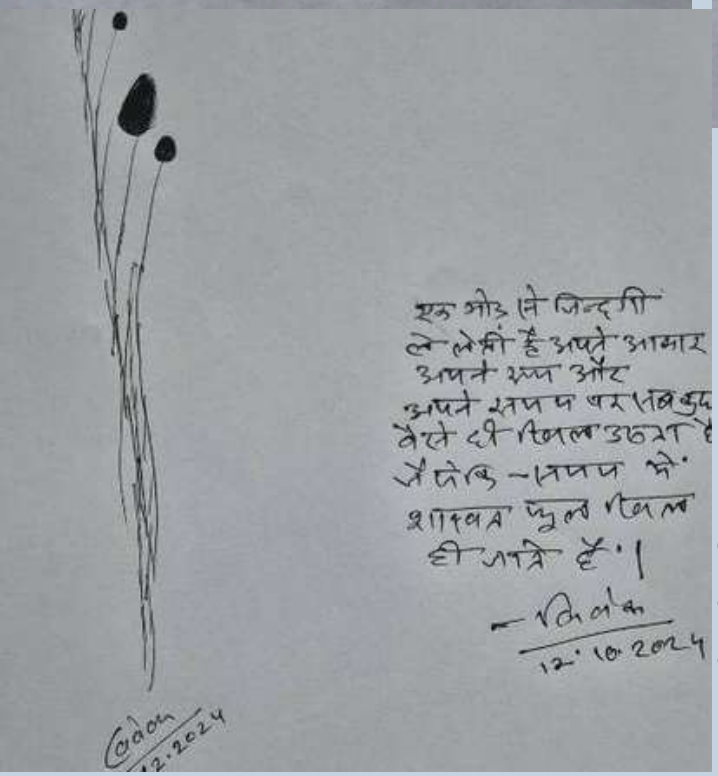

विवेक मिश्रा,
प्रसिद्ध लेखक, कवि
कोटा, राजस्थान

एक जगह से चलते हैं और चलते चलते रास्ते अलग हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि एक जगह से ही अलग अलग मंजिलों के लिए चल दिए हों। यह भी कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के बीच असमानता कम समान चित् भूमियां ज्यादा होती हैं। एक ही चित् में स्त्री -पुरुष साथ साथ पलते हैं और साथ साथ चलते हैं। हमारा आधार एक ही है एक ही जड़ से निकल कर अलग अलग रास्ते पर हम सब चल पड़ते हैं और कहते चलते हैं कि सब कुछ जीवन के संदर्भ से आता है।

लघु कथा- कबाड़

डॉ मुशीर अहमद

हमेशा की तरह इतवार के दिन हामिद मियाँ को पुरानी साइकिल साफ़ करते देख वसीम नें कहा, "अब्बा आप फिर कबाड़ लेकर बैठ गए, इसे बेच क्यों नहीं देते किसी कबाड़ी को?"
हामिद मियाँ, "ये साइकिल मेरे अब्बा की है।"
वसीम ने कहा "अब्बा की है तो क्या हुआ?"
"अभी तुम नहीं समझोगे बेटे।" हामिद मियाँ नें संजीदा होते हुए जवाब दिया ।
वसीम नें अब्बा से बहस करना मुनासिब न समझा और वहाँ से चला गया। वसीम की बीवी हिना दोनों को चुपचाप देखती रही। कुछ महीनों बाद एकदिन अचानक हामिद मियाँ को दिल का दौरा पड़ा और उनका इंतेक़ाल हो गया। चालीसवें के बाद एक इतवार को हिना नें देखा कि वसीम अब्बा की साइकिल साफ़ कर रहा है।

लघु कथा- प्रतिबिंब

मीटिंग में समय से पहुँचने के लिए ड्राइवर नें शॉर्टकट के लिये ज्यों ही शहर के रेडलाइट एरिया की बदनाम गली को चुना रूपेश बाबू नें कहा, "इधर से न ले जाओ।" जगह जगह इस्मत के सौदे होते देख रूपेश बाबू नें कहा, "कितने गंदे हैं यहाँ के मर्द और औरतें।" ड्राइवर नें कहा, "साहब ग़रीब लोग इनके यहाँ आते हैं और इज़्ज़तदार लोग इन्हें घर बुला लेते हैं।" अचानक सामने एक 10 साल का बच्चा आ जाने पर ड्राइवर नें ब्रेक लगाया लेकिन बच्चा टकरा गया। माथे से ख़ून निकलने लगा। बाज़ार में हलचल मच गई। उसकी माँ जो ग्राहक का इंतज़ार कर रही थी चीख़ती हुई पास आ गई। रूपेश बाबू भी गाड़ी से नीचे उतरकर उसके पास गए। लेकिन जब उस बच्चे को देखा उनके चेहरे का रंग सफ़ेद पड़ गया क्योंकि मानों उन्ही का प्रतिबिंब हों।

डॉ मुशीर अहमद उभरते हुए कथाकार है, दर्शन व अर्थशास्त्र के साथ मानवीय संवेदनाओं पर आपकी गहरी पकड़ है । आप वर्तमान में जैश किसान इंटर कॉलेज, घोसी, मऊ, उ.प्र. में प्रवक्ता हैं ।

कृतिका सिंह के कार्टून

कृतिका सिंह जी उभरती हुई कार्टूनिस्ट हैं, जीवन के विविध पक्षों पर आपके सीधे हस्तक्षेप करते कार्टून बहुत लोकप्रिय हैं, आप कृतिका जी को उनके फेसबुक पेज Kritika cartoonist (https://www.facebook.com/cartoonistkritika?mibextid=ZbWKwL) पर फॉलो भी कर सकते हैं

प्रस्तुत है कृतिका जी के जीवंत कार्टून :

वीथिका ई पत्रिका :आपसे आपकी बात

वीथिका ई पत्रिका साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान को समर्पित मासिक ई पत्रिका है. आप हमारे वेबसाइट www.vithika.org से पत्रिका डाउनलोड कर सकते हैं, व लेखों, रचनाओं पर हमें अपने विचार भी भेज सकते हैं. वीथिका ई पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखक के अपने विचार हैं, इनसे या इनके विचारों से पत्रिका या पत्रिका की सम्पादकीय समिति किसी प्रकार की सहमति नहीं रखती.

हमें अपनी रचना या लेख भेजने के लिए आप उसे हिंदी भाषा में टाइप कर हमें जीमेल या whatsapp कर सकते हैं :

Gmail : vithikaportal@gmail.com
whatsapp: 8175800809